

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 8: भगवान् नृसिंह

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अत्याचारी ने जानना चाहा कि भगवान् कहाँ हो सकते हैं। “क्या वे इस खम्भे में हैं?” उसने उपहास किया, और उसे अपनी मुट्ठी से मारा। उसी क्षण स्वयं भगवान् प्रकट हो गए — एक ऐसे रूप में जो न पशु था न मनुष्य — अपने सेवक के वचन की रक्षा करने और उस भक्त की रक्षा करने के लिए जिसने कभी उन पर संदेह नहीं किया।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

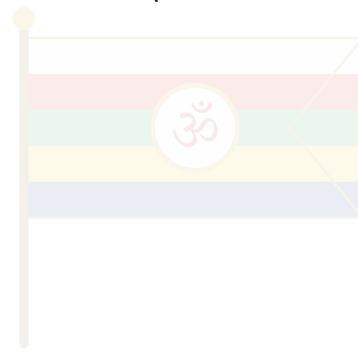
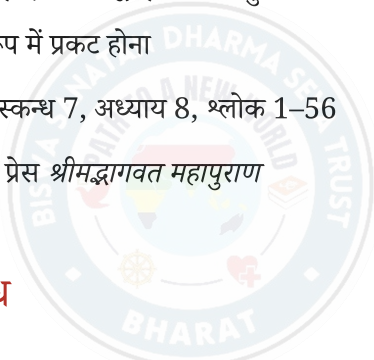
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। सप्तम स्कन्ध का यह अष्टम अध्याय प्रह्लाद की कथा को उसके चरम पर ले आता है, जब एक बालक का भगवान् की निरन्तर निकटता में अटल विश्वास स्वयं नृसिंह को पुकार लेता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 8
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् नृसिंह रूप में प्रकट होते हैं
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, सम्राट युधिष्ठिर को कथा सुनाते हुए; प्रह्लाद तथा हिरण्यकशिपु के वचनों सहित, और देवताओं की प्रार्थनाएँ
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर
- मुख्य स्थान: हिरण्यकशिपु का राजदरबार तथा सभा-भवन
- मुख्य विषय-वस्तु: प्रह्लाद के विरुद्ध हिरण्यकशिपु का अन्तिम क्रोध, तथा अपने भक्त की रक्षा करने और अत्याचारी का नाश करने के लिए भगवान् का नृसिंह रूप में प्रकट होना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 8, श्लोक 1–56
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



एक पिता का क्रोध

असुर-बालकों ने, नारद ने कहा, प्रह्लाद की निर्दोष शिक्षा को अपना लिया और अपने गुरु का उपदेश छोड़ दिया। उनके मन को पूर्णतः भगवान् की भक्ति की ओर मुड़ता देख चिन्तित होकर, गुरु-पुत्र ने यह बात राजा को बता दी। यह सुनकर कि उसके अपने पुत्र ने एक बार फिर नन्हे दैत्यों को कुल-मार्ग से विचलित किया है, हिरण्यकशिपु क्रोध से काँप उठा और उससे छुटकारा पाने का निश्चय किया। उसने प्रह्लाद को कठोर वचनों से फटकारा — यद्यपि वह बालक उसके सम्मुख अनुशासित, विनम्र, तथा जुड़े हाथों से खड़ा था, ऐसे व्यवहार के सर्वथा अयोग्य — और, पैर से कुचले गए सर्प की भाँति फुफकारते हुए, उसे उसी दिन यमलोक भेज देने की धमकी दी। “किसके बल से,” उसने पूछा, “तू इतना दुस्साहसी हो गया है कि मेरे अधिकार की अवहेलना करे, जबकि तीनों लोक तथा उनके रक्षक मुझसे काँपते हैं?”

किसके बल से

प्रह्लाद का उत्तर निर्भय तथा शान्त था। जिस बल से वह खड़ा है, उसने कहा, वह उसका अपना नहीं अपितु उसी एक भगवान् का है, जो उसके पिता सहित संसार के प्रत्येक प्राणी को — चाहे वह किसी भी कोटि या अवस्था का हो — धारण करते हैं।

श्रीप्रह्लाद उवाच

न केवलं मे भवतश्च राजन्

स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।

परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये

ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ७ ॥

*śrī-prahrāda uvāca na kevalam me bhavataś ca rājan sa vai balaṁ balinām cāpareṣām pare
'vare 'mī sthira-jaṅgamā ye brahmādayo yena vaśam praṇītāḥ*

अर्थ: प्रह्लाद ने कहा: वे केवल मेरे ही नहीं अपितु आपके भी बल हैं, हे राजन्, और समस्त अन्य बलशाली प्राणियों के भी। यह वही हैं जिनके द्वारा ये सभी प्राणी — ऊँचे तथा नीचे, चर तथा अचर, ब्रह्मा से लेकर नीचे तक — वश में रखे गए हैं। (SB 7.8.7)

वह भगवान्, प्रह्लाद ने आगे कहा, परम शासक हैं, महान कालस्वरूप हैं, तथा प्रकृति के समस्त गुणों के नियन्ता हैं; वही अकेले विश्व की रचना, रक्षा तथा संहार करते हैं।

प्रह्लाद ने तब सीधे अपने पिता के हृदय की ओर मुड़कर कहा। इस आसुरी वृत्ति को छोड़ दीजिए, उसने विनम्रता से निवेदन किया, और समस्त प्राणियों के प्रति दृष्टि को समभाव में लाइए, क्योंकि वास्तविक शत्रु और कोई नहीं, केवल भटका हुआ, असंयत मन ही है — और उसे जीत लेना ही उस अनन्त प्रभु की सर्वोच्च आराधना कहलाती है।

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः

समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।

ऋतेऽजितादात्मन उत्पथे स्थितात्

तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम् ॥ ९ ॥

*jahy āsuram bhāvam imam tvam ātmanaḥ samam mano dhatsva na santi vidviṣaḥ rte 'jitād
ātmana utpathe sthitāt tad dhi hy anantasya mahat samarhaṇam*

अर्थ: प्रह्लाद ने कहा: यह आसुरी स्वभाव त्याग दीजिए; मन को सबके प्रति समान रखिए, क्योंकि कहीं कोई शत्रु नहीं है सिवाय उस मन के जो अपने सच्चे मार्ग से भटककर अनियन्त्रित हो गया है। उसी मन को वश में करना ही अनन्त भगवान् को अर्पित की जाने वाली सर्वोच्च उपासना है। (SB 7.8.9)

जो लोग यह दावा करते हैं कि उन्होंने सभी दिशाओं में शत्रुओं को जीत लिया है, उसने आगे कहा, जबकि वे काम, क्रोध आदि छह आन्तरिक शत्रुओं के दास बने रहते हैं, वे केवल स्वयं को धोखा देते हैं; किन्तु जिसने अपने आप को वश में कर लिया है और प्रत्येक प्राणी को समान दृष्टि से देखता है, उसके लिए वास्तव में डरने योग्य कोई शत्रु शेष नहीं रहता (श्लोक ९-१०)।

क्या तेरा भगवान् इस खम्भे में है

हिरण्यकशिपु ने केवल उसका उपहास किया। कहाँ है, उसने पूछा, यह विश्व का स्वामी जो मुझसे भिन्न है? यदि वह वस्तुतः सर्वत्र है, तो वह सामने खड़े इस खम्भे में क्यों नहीं दिखता?

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।

क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥ १२ ॥

yas tvayā manda-bhāgyokto mad-anyo jagad-īśvaraḥ kvāsau yadi sa sarvatra kasmāt stambhe na dṛśyate

अर्थ: हिरण्यकशिपु ने कहा: विश्व का यह स्वामी जो मुझसे भिन्न है, जिसकी तू बात करता है, हे अभागे — कहाँ है वह? यदि वह वस्तुतः सर्वत्र है, तो सामने के इस खम्भे में क्यों नहीं दिखता? (SB 7.8.12)

यह डींग मारते हुए कि वह स्वयं अपने बकवादी पुत्र का सिर काट देगा, उसने बालक के प्रिय भगवान् को उसकी रक्षा के लिए आने की चुनौती दी:

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ।

गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १३ ॥

so 'haṁ vikatthamānasya śiraḥ kāyād dharāmi te gopāyeta haris tvādya yas te śaraṇam īpsitam

अर्थ: अतः अब मैं तेरा सिर तेरे धड़ से काट देता हूँ, तू जो डींग मारने वाला है; यह हरि, जिसे तूने अपना आश्रय बनाया है, आज तेरी रक्षा करे। (SB 7.8.13)

इतना कहकर, वह बलशाली असुर तलवार हाथ में लेकर अपने सिंहासन से उछला, और खम्भे को अपनी मुट्ठी से मारा।



हिरण्यकशिपु भगवान् की उपस्थिति का उपहास करता है और अपने दरबार के विशाल खम्भे को मारता है, उस भगवान् को प्रकट होकर उसे बचाने की चुनौती देते हुए जिनकी उसका पुत्र उपासना करता है (SB 7.8.12-15)।

भगवान् प्रकट होते हैं

तत्काल खम्भे के भीतर से एक भयंकर ध्वनि गूँज उठी, मानो ब्रह्माण्ड का कवच ही फट गया हो। अपने सेवक के वचन तथा समस्त वस्तुओं में अपनी उपस्थिति को प्रमाणित करने के लिए, भगवान् खम्भे से एक अद्भुत रूप में प्रकट हुए जो न पशु था न मनुष्य। चारों ओर देखते हुए, हिरण्यकशिपु ने उस विचित्र प्राणी को अपने सम्मुख प्रकट होते देखा और आश्चर्य किया कि यह क्या हो सकता है:

स सत्त्वमेनं परितो विपश्यन्
स्तम्भस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ।
नायं मृगो नापि नरो विचित्र-
महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥ १८ ॥

sa sattvam enaṁ parito vipaśyaṁ stambhasya madhyād anunirjihānam nāyaṁ mṛgo nāpi naro vicitram aho kim etan nṛ-mṛgendra-rūpam

अर्थ: चारों ओर ध्यान से देखते हुए, उसने उस प्राणी को खम्भे के मध्य से निकलते देखा, न पशु न मनुष्य। “कितना अद्भुत,” उसने सोचा, “यह कैसा विचित्र रूप है, मनुष्य तथा सिंह का एक साथ?” (SB 7.8.18)

भगवान् नृसिंह रूप में प्रकट हुए थे, नर-सिंह — तेजोमय, राजसी, तथा अपने शत्रु के लिए भयंकर — ठीक उस वरदान के पालन के लिए जो हिरण्यकशिपु ने कभी जीता था: कि वह न मनुष्य से मारा जा सके न पशु से, न दिन में न रात में, न पृथ्वी पर न आकाश में, न भीतर न बाहर, किसी शस्त्र से नहीं। एक ऐसे रूप में जो न पूर्णतः मनुष्य था न पशु, भगवान् आए थे।



अपने भक्त की श्रद्धा तथा समस्त वस्तुओं में अपनी उपस्थिति का सम्मान करने के लिए, भगवान् खम्भे से नृसिंह के अद्भुत रूप में प्रकट होते हैं, न मनुष्य न पशु (SB 7.8.17-19)।

अत्याचारी का पतन

गर्जते हुए, असुर-राज ने अपनी गदा उठाई और भगवान् पर टूट पड़ा; किन्तु उस अनन्त तेज के सम्मुख उसका बल ज्वाला के सम्मुख पतंगे-सा था। भगवान् ने उसे सहज ही पकड़ लिया, और सभा-भवन की देहरी पर — न भीतर न बाहर — सन्ध्या-वेला में जब सूर्य अस्त हो रहा था — न दिन न रात — उन्होंने उस असुर को अपनी जंघाओं पर रखा — न पृथ्वी पर न आकाश में — और अपने नखों से — कोई शस्त्र नहीं — अत्याचारी के जीवन का अन्त कर दिया। इस प्रकार वरदान की हर शर्त का सम्मान हुआ, और तीनों लोकों का उत्पीड़क, जिसने देवताओं, ऋषियों तथा अपने ही कोमल पुत्र को त्रस्त किया था, समाप्त हो गया। इसमें भी भगवान् की करुणा कार्यरत थी: वह असुर, दिव्य रूप को निहारते हुए मारा गया, एक दीर्घ शाप से मुक्त हो गया और अन्ततः अपनी शत्रुता से परे उठा लिया गया।

फिर भी इस कार्य के पश्चात् भगवान् क्रुद्ध बने रहे, और किसी का उनके निकट जाने का साहस न हुआ। उन्होंने राजसिंहासन पर आसन ग्रहण किया, उनका क्रोध अभी शान्त न हुआ था, जबकि स्वर्ग से देव-स्त्रियों ने पुष्प-वर्षा की, दुन्दुभियाँ बजीं, और गन्धर्वों ने गान किया।



अपना कार्य पूर्ण कर, भगवान् नृसिंह सिंहासन पर आसन ग्रहण करते हैं जबकि देवगण कृतज्ञता में आकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं (SB 7.8.34-37)।

देवताओं की प्रार्थनाएँ

तब सृष्टि के महान जन निकट आए, प्रत्येक कुछ दूरी से स्तुति अर्पित करते हुए, हाथ सिर पर जोड़े। ब्रह्मा ने उस अनन्त भगवान् को नमन किया जिनकी अद्भुत शक्ति है, जिनकी सामर्थ्य कोई नहीं माप सकता, जो प्रकृति के गुणों के द्वारा सृष्टि, पालन तथा संहार चलाते हैं और फिर भी अपरिवर्तित रहते हैं। रुद्र ने प्रार्थना की कि भगवान्, जिनका क्रोध अब शान्त हो गया, उस भक्त प्रह्लाद की रक्षा करें जिसने उनकी शरण ली है। इन्द्र ने धन्यवाद दिया कि हृदय-कमल, भगवान् का सच्चा धाम, जिसे असुर ने दीर्घकाल तक हड़प रखा था, पुनः प्राप्त हो गया। ऋषियों, पितरों, सिद्धों, विद्याधरों, नागों, मनुओं, प्रजापतियों, गन्धर्वों, तथा स्वर्ग के समस्त गणों ने बारी-बारी भगवान् की स्तुति की, यह स्मरण करते हुए कि अत्याचारी ने उन्हें कैसे सताया था और भगवान् ने कैसे उन्हें मुक्त किया। सबसे अन्त में, भगवान् के पार्षदों ने घोषणा की कि यह उग्र रूप, समस्त संसार के लिए आनन्ददायक, संसार के कल्याण के लिए धारण किया गया था, और यह कि असुर की मृत्यु भी एक कृपा का कार्य थी। यह कृतज्ञता का एक ऐसा समवेत स्वर है जो समूची सृष्टि को धन्यवाद में समेट लेता है।



ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, ऋषिगण, तथा स्वर्ग के समस्त गण जुड़े हाथों से भगवान् नृसिंह को कृतज्ञता की प्रार्थनाएँ अर्पित करने निकट आते हैं (SB 7.8.40-56)।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. भगवान् वस्तुतः सर्वत्र विद्यमान हैं। हिरण्यकशिपु के उपहासपूर्ण प्रश्न का उत्तर सबसे प्रत्यक्ष रीति से दिया जाता है: भगवान् खम्भे के भीतर से प्रकट होते हैं। वे मन्दिर या स्वर्ग तक सीमित नहीं, अपितु समस्त वस्तुओं में निवास करते हैं और जहाँ भी आवश्यकता हो वहाँ प्रकट हो सकते हैं (SB 7.8.12-18)।
2. भगवान् अपने भक्त के वचन की रक्षा करते हैं। प्रह्लाद ने भगवान् को समस्त का बल तथा सर्वत्र विद्यमान घोषित किया था; भगवान् ठीक अपने सेवक की श्रद्धा को प्रमाणित करने के लिए प्रकट होते हैं। भक्त का विश्वास कभी निराश नहीं होता (SB 7.8.17-18)।
3. कोई वरदान उसकी रक्षा नहीं कर सकता जो दिव्य इच्छा का विरोध करता है। हिरण्यकशिपु का चतुराई से रचा गया वरदान उसे अजेय बना देता प्रतीत हुआ, फिर भी भगवान् ने हर शर्त पूरी करते हुए भी विजय पाई। भगवान् के विरुद्ध चतुराई केवल अपनी ही सीमाएँ प्रकट करती है (SB 7.8.19-29)।
4. दिव्य क्रोध भी पूर्वनिर्धारित कृपा की ही अभिव्यक्ति है। भगवान् के पार्षद अपनी अन्तिम प्रार्थना में यह प्रकट करते हैं कि हिरण्यकशिपु पूर्वजन्म में जय नामक वैकुण्ठ का द्वारपाल था, जिसका असुर-शरीर में गिरना — तथा भगवान् के प्रति उसकी शत्रुता भी — उस शाप के द्वारा घटित हुआ जिसे भगवान् ने स्वयं स्वीकृति दी, ताकि प्रबल विरोध का एक संक्षिप्त जीवन उसे सामान्य भक्ति के वर्षों से भी शीघ्र घर लौटा सके (SB 7.8.56)। अतः इस अध्याय में कहीं भी दो समान शक्तियों की स्पर्धा नहीं है, न ही क्रूरता का क्रूरता से प्रत्युत्तर। नर-सिंह का भयंकर रूप कृपा का ही सबसे कठोर मुखौटा है — यह प्रमाण कि भगवान् के घोरतम शत्रु भी कभी उनकी करुणा से बाहर नहीं होते, अपितु कुछ काल के लिए ही उनका विरोध करने की भूमिका में रखे जाते हैं ताकि कृपा उन तक शीघ्र पहुँच सके।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

यह ध्यान देने योग्य है कि इस अध्याय में भगवान् को वस्तुतः क्या पुकारता है। यह कोई विस्तृत अनुष्ठान नहीं, न तप का कोई पर्वत, अपितु एक बालक की सरल, अडिग दृढ़ता — मृत्यु के सम्मुख भी दोहराई गई — कि भगवान् समस्त प्राणियों का बल हैं और सर्वत्र विद्यमान हैं। जब उस श्रद्धा को चुनौती दी जाती है, तब भगवान् किसी तर्क से नहीं अपितु अपनी उपस्थिति से उत्तर देते हैं। हमारे लिए इसमें बड़ी सान्त्वना है। हमें लग सकता है कि भगवान् दूर हैं, साधारण जीवन के खम्भों के पीछे छिपे; किन्तु यह कथा आग्रह करती है कि वे हमारी कल्पना से कहीं निकट हैं, उन्हीं वस्तुओं में विद्यमान जिन्हें हम देखते हुए भी नहीं देखते। यह अध्याय हमें दिव्यता का एक परिपक्व चित्र भी देता है: वही भगवान् जो विनम्र के प्रति अनन्त कोमल हैं, क्रूरता तथा उत्पीड़न के प्रति उग्र हैं, और वह उग्रता भी प्रेम का ही एक रूप है — असहाय की रक्षा करती, और अन्ततः उसी को मुक्त करती जिस पर वह प्रहार करती है। ऐसे भगवान् की शरण लेना हर ओर से सुरक्षित होना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज भगवान् की निकटता में प्रह्लाद के विश्वास का अभ्यास करें। जब कोई भय या कठिनाई आपके सम्मुख किसी अटल खम्भे-सी उठे, रुकें, उस भगवान् में अपना विश्वास रखें जो उसके भीतर तथा आपके भीतर विद्यमान हैं, और मौन रूप से कहें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इसे उसी श्रद्धा का एक छोटा कार्य बनने दें जिसने नृसिंह को पुकारा — यह स्मरण कि भगवान् कभी अनुपस्थित नहीं हैं, और जो उनकी शरण लेते हैं वे ऐसे रूपों में सुरक्षित रहते हैं जिनकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का अष्टम अध्याय एक ही विशाल आश्वासन पर टिका है: भगवान् वस्तुतः सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो भक्त उन पर पूर्ण विश्वास रखता है, उसे वे कभी निराश नहीं करते। हिरण्यकशिपु का चतुराई से रचा गया वरदान, जो उसे हर संकट से परे रखने के लिए बनाया गया था, भगवान् की इच्छा के सम्मुख क्षण भर भी टिक न सका — क्योंकि कृपा के विरुद्ध लगाई गई चतुराई केवल अपनी ही सीमाएँ प्रकट करती है। प्रह्लाद की सरल, अडिग श्रद्धा हमारी भी बने, ताकि भय या संशय का जो भी खम्भा हमारे सम्मुख खड़ा हो, हम स्मरण रखें कि जिन भगवान् को हम सदा नहीं देख पाते, वे वस्तुतः कभी अनुपस्थित नहीं हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, अष्टम प्रवचन, पृष्ठ 681–688।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशांसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-8-the-lord-appears-as-narasimha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

